**ओ३म्**

**‘हमारे माता-पिता और परमात्मा’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

मेरे शरीर के माता-पिता अब इस संसार में नहीं हैं। उनसे मैने देहरादून में आज से लगभग 63 वर्ष पूर्व जन्म पाया था। जन्म ही नहीं अपितु मेरा पालन व पोषण भी उन्होंने किया। माता-पिता निर्धन थे। पिता जी श्रमिक थे। माता धार्मिक गृहिणी परन्तु उन्होंने मेरा इतना अच्छा पालन किया कि आज मैं उन्हें याद कर भावविभोर हो जाता हैं। मुझे लगता है कि यदि व दोनों और अधिक जीवित रहते तो मैं उनकी कुछ सेवा करता। परन्तु मेरे प्रारब्ध में उनका मुझसे सेवा करवाना शायद नहीं था। जो भी हो, उन्होंने मेरे लिए जो कुछ किया, उसी के कारण मैं आज जो भी हूं, बन सका। मैं उनका सदैव ऋणी रहूँगा। मैं समझता हूं कि प्रायः सभी मनुष्यों के माता-पिता अपनी सन्तानों के पालन पोषण में अनेकविध तप करते हैं और सन्तान को सुयोग्य बनाने के लिए अनेक कष्ट उठाते हैं। सन्तान जैसी हो, जितनी ज्ञानी व भौतिक सुविधाओं व धन आदि से सम्पन्न हो जाये, उसमें मुख्य माता-पिता व आचार्य एवं अन्य परिस्थितियां भी होती हैं जिनमें सन्तान या व्यक्ति का प्रारब्ध या भाग्य भी जुड़ा रहता है। अतः सभी सन्तानों को सदैव माता-पिता के प्रति कृतज्ञ रहना चाहिये व उनकी यथाशक्ति व अधिक से अधिक सेवा-सुश्रुषा करनी चाहिये। वे लोग भाग्यशाली हैं जिनके माता-पिता दीर्घायु तक जीवित रहते हें और सन्तानों को उनकी सेवा-सुश्रुषा करने का अवसर मिलता है। परन्तु आजकल देखा जा रहा है अंग्रेजी शिक्षा व पद्धति से पढ़कर लोग अपने माता-पिता, अभिभावकों व अन्यों का उचित सम्मानपूर्ण व्यवहार व कर्तव्य पालन आदि नहीं करते या उसमें उपेक्षाभाव रखते हैं जो कि अनुचित एवं निन्दनीय है। **बाल्मिकी रामायण में मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी द्वारा पिता दशरथ को कही गईं ये पंक्तियां बहुत ही मार्मिक हैं जिसमें उन्होंने कहा कि पिताजी आप अपना कष्ट मुझे कहें। यदि आप जलती चिता में कूदने के लिए भी कहेंगे तो मैं इस पर बिना विचार किये ही चिता में कूद जाऊगां। यह आदर्श पुत्र की मर्यादा है। क्या हम ऐसे या इसके आस-पास हैं? विचार करें।**

**मनमोहन कुमार आर्य**

माता-पिता से हमारा सम्पर्क व सम्बन्ध पिता व माता के शरीर में हमारी जीवात्मा के आने के साथ होता है। यह जीवात्मा पूर्व जन्म में मृत्यु को प्राप्त होकर कर्मानुसार जिसे प्रारब्ध कहते हैं, माता-पिता के शरीरों में से होता हुआ नियत अवधि में जन्म प्राप्त करता है। जन्म के बाद माता-पिता व परिवारजन मिलकर पालन-पोषण करते हैं, उसकी शिक्षा की व्यवस्था करते हैं, व्यवसाय दिलाने में सहायता करने के साथ विवाह आदि कराते हैं। फिर परिवार में सन्तानों का जन्म होता है और कल के बालक-बालिकायें अब माता-पिता बन कर प्रौढ़ या वृद्ध होने लगते हैं। इस बीच माता-पिता की आयु भी बढ़ रही होती है। कभी किसी को कोई रोग आदि भी हो जाता है और किसी के कम आयु में और किसी के अधिक आयु में अनेकानेक कारणों से समयान्तर पर माता-पिताओं में से एक-एक करके मृत्यु हो जाती है। माता-पिता की मृत्यु के बाद हमारा उनकी आत्माओं से सम्बन्ध समाप्त हो जाता है क्योंकि हमारा सम्बन्ध माता-पिता की आत्माओं से था जो कि अन्यत्र नये जन्म की प्राप्ति के लिए जा चुकीं होतीं हैं। उनके प्रति हमारी आदर बुद्धि तो सदा बनी रहती है परन्तु अब उनके प्रति कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता। उनके प्रति जो हमारे कर्तव्य थे वह उनके जीवन काल में ही थे, यदि हमने अपनी सेवा-सत्कार से उन्हें सन्तुष्ट रखा तो बहुत अच्छा था और किसी कारण नहीं कर सके तो अब उसका परिमार्जन यथोचित नहीं हो सकता। वह तो शरीर त्याग कर जा चुके हैं और ईश्वर की व्यवस्था से उनका कर्मानुसार मनुष्य या अन्य किसी योनि में जन्म हो गया होगा, यही वैदिक सनातन विधान है। अतः माता-पिता की मृत्यु के बाद अन्त्येष्टि से इतर कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता। श्राद्ध करना एक अवैदिक कृत्य होता है जिससे माता-पिता की आत्माओं को तो कोई लाभ नहीं पहुंचता, इसका समर्थन करने वाले व लाभ उठाने वाले दूसरे होते हैं जो अपने यजमान को अवैदिक कृत्य कराके अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं जिसका परिणाम भी वैदिक कर्म-व्यवस्था के अनुसार इनके प्रति भी अच्छा होने वाला नहीं है। अज्ञानता व स्वार्थ के कारण ही यह सब आज के वैज्ञानिक व आधुनिक युग में भी चल रहा है। महर्षि दयानन्द के अनुयायी ऐसे अवैदिक कृत्यों से बचे हुए हैं, यह ऋषि दयानन्द की हम पर बहुत बड़ी कृपा हैं।

माता-पिता की सत्ता की तरह ही ईश्वर की भी सत्ता है जो माता-पिता के ही समान किंवा कहीं अधिक हमसे प्रेम करती है व हमारा अधिकतम् उपकार करती है। वह सत्ता सर्वव्यापक है अतः सदैव हमारे साथ हमारे अन्दर व बाहर, हममें ओत-प्रोत है। हमारी तरह ही वह भी चेतन सत्ता हें। हम व वह, दोनों ही नित्य, अनादि, अनुत्पन्न, अजन्मा, अमर, अविनाशी हैं। ईश्वर सर्वज्ञ व सर्वव्यापक होने से सदा शुद्ध-बुद्ध व मुक्त है तथा हमें उसके सान्निध्य से सत्कर्मों के द्वारा शुद्ध, बुद्ध व मुक्त होना है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि-योगी-ज्ञानी-याज्ञिक आदि अपना जीवन ईश्वर को अध्ययन व उपासना द्वारा प्रसन्न कर उसकी सहायता से जीवन को सद्कर्मों व अपवर्ग प्राप्त कराने में लगाते थे। उनका जीवन त्यागपूर्ण होता था। वह आध्यात्मिक ज्ञान की साधना करते थे और उसका प्रचार व प्रसार कर समाज, देश व विश्व का कल्याण करते थे। महाभारत काल तक के सृष्टि के लगभग 2 अरब वर्षों तक उनके कार्यों के कारण विश्व भूगोल में सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य था। संसार में केवल एक ही मत था जिसे हम वैदिक धर्म के नाम से जानते हैं। समय ने करवट ली, पांच हजार वर्ष पूर्व महाभारत का युद्ध हुआ। देश-विदेश के योद्धा इसमें वीरगति को प्राप्त हुए। देश-देशान्तर में अव्यवस्था फैल गई और सद्ज्ञान वेद का प्रचार-प्रसार का कार्य अवरूद्ध हो गया। अज्ञान का अन्धकार बढ़ता गया। क्या देश और क्या देशान्तर, सर्व़त्र घोर अज्ञानान्धकार छा गया। ऐसे समय में नाना प्रकार के अवैदिक मतों की सृष्टि हुई और भोले-भाले मनुष्य उनके अनुयायी बनकर उनके सत्यासत्य विचारों व मान्यताओं का अनुकरण करने लगे। अज्ञानता के कारण मनुष्यों की स्वार्थ, काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष आदि की प्रवृत्तियां भी बढ़ती गई और लोग इन्हीं में सुख की अनुभूति करने लगे। इसका परिणाम मध्यकाल का निकृष्टतम समय रहा जहां अज्ञान, मिथ्याविश्वासों, सामाजिक असमानता व कुरीतियों आदि का सर्वत्र प्रसार देखने को मिलता है। अनेक युगों के बाद ईश्वर की कृपा से महर्षि दयानन्द का आगमन होता है। उनके हृदय में सच्ची जिज्ञासायें उत्पन्न होती हैं। वह उनके समाधान के लिए कमर कसते हैं और अपूर्व पुरूषार्थ व प्रयत्नों के बाद वह उस ज्ञान वेद व उसके सत्य अर्थों की खोज करने में सफल होते हैं जिससे सारे विश्व में स्वर्ग की स्थापना की जा सकती थी। वह अपने जीवन में जितना कुछ कर सकते थे, उससे अधिक ही करने का प्रयास किया व किया भी। अब देश व विश्व को स्वर्ग बनाने का कार्य हमारे ऊपर हैं। हमें लगता है कि हम व हमारे देश के लोग इस कार्य के लिए पात्र नहीं हैं। हम निजी स्वार्थों में फंसे हुए हैं। हम अज्ञान को दूर कर प्रकाश में जाना ही नहीं चाहते। इसमें हमारे मत-मतान्तरों के नेता व अन्य स्वार्थी प्रभावशाली लोग हैं जिनकी बुद्धि अज्ञान तिमिर से आच्छादित, विकृत व कुण्ठित कह सकते हैं, वह भी इस सत्कार्य के विरोधी हैं। ईश्वर की कृपा होगी तो आने वाले युगों में महर्षि दयानन्द का रह गया शेष कार्य अवश्य पूरा होगा। इसके लिए जो अपेक्षित होगा वह ईश्वर करेगा।

ईश्वर हमारा माता व पिता दोनों है। वह हमारा बन्धु भी है और सखा भी है। उसी के आधार पर हमारा यह जीवन है। इस जीवन से पूर्व भी हमारे असंख्य जीवन रहे हैं और भविष्य के भी निरन्तर मिलने वाले जीवन उसी के आधार व सहाय पर होंगे। हमें उसे उसके यथार्थ रूप में जानना है। उसके जानने के लिए वेद व वैदिक साहित्य तो है परन्तु जनसामान्य सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, आर्याभिविनय आदि ग्रन्थों की सहायता से उसे यथार्थ रूप में जान सकता है। उसे जानकर उसकी स्तुति, प्रार्थना, उपासना करके व यज्ञ-अग्निहोत्र आदि से समाज को स्वस्थ व सुखी रखना हमारा कर्तव्य बनता है। ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपसना ऐसी ही है जैसे कि एक सन्तान अपने माता-पिता को सुखी व सन्तुष्ट करने के लिए उनकी सेवा व सत्कार करती है जिसके पीछे हमारे माता-पिता के हमारे प्रति किये गये पालन-पोषण आदि कार्य हैं। ईश्वर के उपकारों का धन्यवाद करने हेतु कृतज्ञतारूप स्तुति-प्रार्थना-उपासना करने का विधान है। परमात्मा क्योंकि अशरीरी है और निराकार स्वरूप से सर्वव्यापक होने से हमारी भीतर व बाहर है, अतः उसकी स्तुति-प्रार्थना-उपासना करना हमारा कर्तव्य बनता है। आईये, ईश्वर को जाने। वह हमारा सदा-सदा का साथी, माता-पिता-बन्धु-बान्धवों से अधिक हितकारी है। महर्षि दयानन्द रचित **“सन्ध्या”** के वेद मन्त्रों से मन को एकाग्र कर ध्यान में बैठकर उसकी उपासना कर उसे प्रसन्न व अपने अनुकूल करें और वेदों का प्रचार कर समाज, देश व विश्व के कल्याण में अपना योगदान करें। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**